'रेणु' कृत 'मैला आँचल' और 'परती' : परिकथा' की मूल संवेदना

डॉ० मुकुल शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल : dr.mukulsharma64@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ० मुकुल शर्मा

'रेणु' कृत 'मैला आँचल' और 'परती' : परिकथा' की मूल संवेदना

Artistic Narration 2023,
Vol. XIV, No. 2,
Article No. 15 pp. 112-117

Online available at:
https://anubooks.com/journal/artistic-narration

सारांश

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा–साहित्य में वर्चस्वी रचनाकार के रूप में समादृत फ़णीश्वरनाथ 'रेणु' (1921–1977) के उपन्यास लोक–जीवन के महाकाव्य कहे जाते हैं। 'रेणु' मूलतः अक्षय करुणा और अतलस्पर्शी संवेदना के धनी कथाकार हैं। वे मानवीय भावनाओं के कुशल चितेरे हैं, लेकिन उनका रचनाकार मन उन सामाजिक, राजनीतिक और प्राकृतिक त्रासदियों को अनदेखा नहीं करता, जो किसी भी भावना–लोक को प्रभावित करती हैं। "रेणु' का स्वर आशावादी है और संदेश मानवतावादी, किंतु यह सब आरोपित न होकर सहज भाव से संवेदित है।"[1] वस्तुतः उनकी आंचलिक संलग्नता, रागात्मक कथा–दृष्टि और रचनात्मक भाषा–शैली उनके उपन्यासों के पात्रों और परिवेश को पाठकीय अनुभव का जीवंत और अविस्मरणीय अंग बना देती है। आंचलिक परिवेश में ग्रामीण जीवन को चित्रित करने में 'रेणु' सचमुच बेजोड़ हैं। डॉ॰ यश गुलाटी ने लिखा है कि "ग्राम–जीवन–संबंधी कथाकृतियों को हाशिये से उठाकर रचना–जगत् के केंद्र में स्थापित करने के लिए प्रेमचंद की विरासत के मूलभूत तत्त्वों की व्यापक संवेदनशीलता, वैचारिक खुलापन, मानवतावादी दृष्टि को आत्मसात् और विकसित करने की ज़रूरत थी, किंतु गाँव की जटिल सामाजिक संरचना का, वर्गीय श्रेणियों में सरलीकरण करने की कोशिश में, (नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त ने) जो बिंब प्रस्तुत किया है, वह एक–आयामी ही नहीं, अवास्तविक और गढ़ा हुआ भी प्रतीत होता है। ... मतवादी चश्मे से देखी गई उनकी दुनिया, सामने की दुनिया का प्रतिबिंब नहीं लगती, उससे निराली, कृत्रिम और बनावटी दुनिया मालूम पड़ती है। ... पूर्व–परंपरा के प्रासंगिक तत्त्वों के सृजनात्मक उपयोग और नवीन शिल्प की उद्भावना की क्षमता के कारण ही 'रेणु' प्रेमचंद के सही उत्तराधिकारी होने का ही नहीं, एक नई धारा के प्रवर्तक होने का श्रेय भी पा सके।"[2] 'रेणु' का गाँव पारंपरिक गाँव न होकर नए संदर्भों में बड़ी तेज़ी से बदलता हुआ गाँव है। 'रेणु' परंपरा और आधुनिकता के संधिस्थल पर खड़े गाँव को सही रूप में पहचान लेते हैं।

हिंदी उपन्यास–साहित्य में जिन कुछ कृतियों ने युगांतर उपस्थित किया है, उनमें 'रेणु' का पहला, केतु श्रेष्ठ, सशक्त और अभूतपूर्व मान्यता–प्राप्त उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) सर्वप्रमुख है। इसके प्रकाशन को एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक घटना माना गया और इसी से हिंदी साहित्य में आंचलिक कथा–युग का अभ्युदय हुआ। इसमें कथाकार ने नेपाल की सीमा से सटे उत्तरी–पूर्वी बिहार के एक पिछड़े हुए ग्रामीण अंचल को पृष्ठभूमि बनाकर वहाँ के जीवन, जिससे वह स्वयं भी घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहा है, का अत्यंत सजीव और मुखर चित्रण किया है। अपने उपन्यास का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है, "यह है 'मैला आँचल', एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। ... मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास–कथा का क्षेत्र बनाया है। इसमें फूल भी हैं, शूल भी, धूल भी है, गुलाल भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है कुरूपता भी है मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।"[1] उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में 1942 से स्वतंत्रता–प्राप्ति तक की परिस्थितियाँ और चित्र हैं, जबकि दूसरे खण्ड में स्वाधीनता–प्राप्ति के बाद से अप्रैल, 1948 तक की अल्पावधि में घटित घटनाएँ हैं। पूर्वार्द्ध जितना अधिक ग्रामांचल–केंद्रित है, उत्तरार्द्ध उतना ही राजनीतिक घटना–चक्रों से संबंधित। उपन्यास का नायक एक युवा डॉक्टर है, जो अपनी मेडिकल शिक्षा पूरी करने के बाद एक पिछडे हुए गाँव को अपना कार्य–स्थान बनाता है। इसी क्रम में उसका साक्षात्कार ग्रामीण जीवन के दुःख–दैन्य, अभाव, अज्ञान, अंधविश्वास आदि के साथ तरह–तरह के सामाजिक शोषण–चक्रों में फंसी जनता की पीड़ाओं और संघर्षों से भी होता है। कथा का अंत इस आशामय संकेत के साथ होता है कि युगों से सोई हुई ग्राम–चेतना तेज़ी से जाग रही है। सामाजिक और राजनीतिक चेतना–संपन्न लेखक के रूप में 'रेणु' उस परिवेशगत और आभ्यंतरिक संगठन–विघटन और प्रगति–परिवर्तन को बहुत सूक्ष्मता के साथ चित्रित करते हैं, जो स्वतंत्रता–प्राप्ति के फलस्वरूप गाँवों मे घटित हुआ है। इसके लिए उन्होंने लोक–संस्कृति, लोक–विश्वासों और लोक–जीवन–क्रम पर पड़ने वाले प्रभावों को गहरी आत्मीयता के साथ उकेरा है। लेखक की ममतामयी यथार्थवादी दृष्टि का स्पर्श पाकर आधुनिक 'प्रगतियों से शून्य व्रज–देहात' मेरीगंज का अंग–अंग जीवंत हो उठा है। 'मैला आँचल' मेरीगंज की मैली और संक्रमणशील ज़िंदगी की कशमकश का जीवित चित्र है। दूसरे शब्दों में, मेरीगंज गाँव ही इस उपन्यास का वास्तविक नायक है या उसकी वह मिट्टी, जिससे मुहब्बत कर डॉक्टर का शोध–कार्य सफल हुआ है।[2] "विशिष्ट पात्र की जगह लोक का नायकत्व आधुनिक जनतांत्रिक रुचियों के अधिक अनुकूल है। होरी जैसे दीन–हीन जन द्वारा महामहिम नायक को अपदस्थ कर देने के बाद अब ऐसी स्थिति सामने आ चुकी है, जब नायकत्व विशिष्ट व्यक्ति में केंद्रित नहीं रह गया है, बल्कि खण्ड–खण्ड होकर लोक में बिखर गया है।"[3] उपन्यास में कथा–शिल्प के साथ भाषा–शिल्प और शैली–शिल्प (जो इतिवृत्त, संगीत, चित्र, फ़िल्म, रिपोर्ताज आदि अनेक शैलियों के संयुक्त प्रभाव से निर्मित है) का विलक्षण सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है, जो जितना सहज–स्वाभाविक है, उतना ही प्रभावकारी और मोहक भी।

'मैला आँचल' की संवेदना और शिल्प पर अनेक विद्वानों ने पर्याप्त विस्तार के साथ विचार किया है। डॉ॰ रामदरश मिश्र के अनुसार, "हिंदी में पहली बार किसी अंचल–विशेष के उपेक्षित जीवन की समस्त छवि और कुरूपता, सीमा, विवशता और संभावना को इतनी मानवीय ममता और सूक्ष्मता से रूप दिया गया है। लेखक ने ... अंचल–विशेष की कथा ही नहीं कही है, बल्कि अपनी सशक्त व्यंग्य–शैली से कथा को इस प्रकार नियोजित किया है कि समस्त अंचल सजीव होने के साथ–साथ समस्त जीवन के सौंदर्य–असौंदर्य, सद्–असद् की ओर बड़ी ही सूक्ष्मता से संकेत करता है और इस प्रकार यह कथा अंचल के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक

परिवेश में तथ्य–आयोजन न रहकर जीवंत मानव–संवेदनों, मूल्य–संघर्षों और अंतर्विरोधग्रस्त वर्ग–चेतनाओं की कहानी बन जाती है।"[4] नेमिचंद्र जैन के शब्दों में 'मैला आँचल' में "मिथिला के निरंतर बदलते हुए ... एक गाँव की आत्मा की गाथा है। और यह गाँव सर्वथा विशिष्ट होकर भी केवल मिथिला का ही नहीं, जैसे उत्तर भारत का प्रत्येक गाँव है, जो सदियों से सोते–सोते अब जागकर अंगड़ाई ले रहा है। भारतीय देहात के मर्म का इतना सरस और भाव–प्रवण चित्रण हिंदी में संभवतः पहले कभी नहीं हुआ। ... (उपन्यास की) विशिष्टता है उस अपूर्व आत्मीयता में, जिसके साथ लेखक ने गाँव के जीवन की समस्त कटुता और संगीत को, सरलता और विकृति को, स्वार्थपरता और सामाजिक एकसूत्रता को, अज्ञान और मौलिक नैतिक संस्कार को संजोया है। इतनी तरल भावावेशपूर्ण उत्कृष्टता से शायद ही किसी ने ग्रामीण जीवन को देखा हो शरद और प्रेमचंद ने भी नहीं, ताराशंकर बनर्जी ने भी नहीं। ... लेखक ने देहाती जीवन को अत्यंत ही आत्मीय और कवित्वपूर्ण दृष्टि से देखा है ... लेखक को जीवन की सुंदरता और बहुमुखी मनोरमता से प्यार है, उसकी भव्यता और महत्ता से प्यार है। इसी से उसके किसी भी पात्र के चित्रण में आवश्यक सिद्धांतगत विद्वेश नहीं है, दुराग्रहपूर्ण पक्षधरता नहीं है।"[5] डॉ॰ शशिभूषण सहल की दृष्टि में "'रेणु' ग्रामीण जीवन को कोई दिशा देने की चिंता नहीं करते। गाँव जैसा है, उसे रस लेकर देखना–दिखाना ही उनका उद्देश्य है। 'मैला आँचल' के पात्र जहाँ हैं, वही हैं। वे अंचल में रहकर बाहरी प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करते हुए उस पर अपनी प्रतिक्रिया रह–रहकर व्यक्त करते हैं। वे लट्टू की भाँति तेज़ी से परिस्थितियों में घूमते हैं। किंतु इस हलचल के बाद भी उनकी धुरी, वहीं–की–वहीं, अविचल रहती है। 'रेणु' ने आंचलिक जीवन को स्थिर माना है, तालाब के बंधे हुए पानी की भाँति। उसके किनारे पर बाहर के पक्षी आते हैं, क्रीड़ाएँ करते हैं और चले जाते हैं। तालाब के भीतर से कोई लहर उमगकर स्वयंमेव ऊपर नहीं आती, जिससे पाठक उसकी अंतःशक्ति का परिचय पा सकें।"[6] डॉ॰ नित्यानंद तिवारी मानते हैं कि 'मैला आँचल' की "ठेठ देशीयता (आंचलिकता) विश्व नागरिकतावादी विचारधारा के सामने चुनौती की तरह खड़ी है। वह चाहे जितनी पिछड़ी हुई हो; उसकी जड़ें हैं, परंपरा है, सांस्कृतिक समृद्धि है और इन्हीं कारणों से वह सजीव तथा भिन्न है। यह भिन्नता ठोस मानवीय वास्तविकता है। 'मैला आँचल' की अंतर्वस्तु और आंचलिकता में यह तर्क निहित है कि विशेष रूप से देशीय हुए बिना सार्वभौम होना और सामूहिक जीवन में सक्रिय सहभागिता के बिना मानव–अंतरात्मा की तलाश करना बंजर है, बौद्धिक पाखण्ड है।"[7] डॉ॰ देवेश ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'मैला आँचल' की रचना–प्रक्रिया' (1987) में काफ़ी विस्तार से इस उपन्यास के महत्त्व और प्रदेय को रेखांकित किया है। कुल मिलाकर, 'मैला आँचल' व्यक्ति और कृतिकार दोनों ही रूपों में अप्रतिम फणीश्वरनाथ 'रेणु' की विलक्षण अंतर्भेदी दृष्टि और लेखनी की एक विशिष्ट देन कहा जा सकता है।

यद्यपि 'मैला आँचल' प्रेमचंद की प्रगतिशील परंपरा का उपन्यास है तथापि 'रेणु' और प्रेमचंद की ग्राम–चेतना में पर्याप्त भिन्नता है। "यों 'मैला आँचल' में धूल, शूल और कीचड़ की कमी नहीं है, किंतु साथ ही उसमें फूल, गुलाल और चंदन भी विद्यमान हैं, जो 'गोदान' में प्रायः ग़ायब है। होरी की मृत्यु से 'गोदान' का अंत होता है, किंतु बावनदास की हत्या से 'मैला आँचल' का समापन नहीं होता। ... 'रेणु' की दृष्टि में अंधकार अपराजेय नहीं है और विकल्पहीनता की स्थिति अभी पैदा नहीं हुई है। वास्तव में प्रेमचंद के युग–जैसा नैराश्य 'रेणु'–युग में व्याप्त नहीं था। देश की जनता भूखी और नंगी ज़रूर थी, किंतु नवनिर्वाण के प्रयास भी ज़ोर–शोर से जारी थे। 'मैला आँचल' का अंत ही नहीं, उसका कलेवर भी 'गोदान' के समूचे रचना–परिवेश को आच्छादित करने वाले गहरे अवसाद और घोर निराशा के घटाटोप से मुक्त है।"[8] नेमिचंद्र जैन, डॉ॰ रामदरश मिश्र और डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के विचार में 'मैला आँचल' 'गोदान' की तरह एक 'क्लासिक' उपन्यास नहीं बन सका है।

उसमें "युगजन्य दबाव के फलस्वरूप तीव्रता से बदलते हुए ग्राम की गति का चित्र अवश्य है, पर उसमें 'गोदान'–जैसी वह 'क्लासिक' तस्वीर नहीं है, जो युगों तक मिटती नहीं। 'मैला आँचल' के पात्र एक युग की उपज हैं, जो जितनी तेज़ी से आते हैं, उतनी ही तेज़ी से गतिचक्र में विलीन भी हो जाते हैं। 'गोदान' के होरी और धनिया अजन्ता के भित्ति–चित्रों की भाँति हैं, जो सैकड़ों वर्ष बाद भी उतने ही प्राणवान् और जीवंत बने हुए हैं, क्योंकि उनकी प्रेरणा का स्रोत क्षणिक नहीं, मूलभूत और युग–युगव्यापी है। वास्तव में 'मैला आँचल' का महत्त्व नए दिशा–दर्शन में था, हिंदी के इस या उस लेखक से श्रेष्ठतर होने में नहीं। उसकी विशिष्टता इस बात में थी कि वह राजनीतिक फार्मूलों और सिद्धांतों की मारामारी तथा ख़ून–खच्चर से हटाकर फिर से हमें ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले, धूल–भरे, श्यामल आँचल–तले, आँसू से भीगी हुई धरती पर लहलहाते हुए प्यार के पौधों की ओर खींच ले गया, जहाँ असाढ़ के बादल मादल बजाते हैं, बिजली नाचती है और पुरवैया के झोंकों के साथ खेतों में ज़िंदगी झूम उठती है।"[9] इसके अतिरिक्त, "प्रेमचंद के उपन्यासों की एक बड़ी सीमा यह थी कि उन्होंने व्यक्तियों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया, जितना समस्याओं की ओर। 'रेणु' ने समस्याओं के साथ–साथ व्यक्ति का भी अद्‌भुत समन्वय करने की चेष्टा की है और यही कारण है कि इस उपन्यास में स्थूलता नहीं, सूक्ष्मता की अभिव्यक्ति कलात्मक ढंग से हुई है, जो इसे प्रेमचंद के ग्राम–चित्रण से अलग करती है। ... ग्रामीण पात्रों को इतनी मानवीयता, सहृदयता तथा काव्यमयता के साथ प्रेमचंद के बाद पहली बार नए संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है, जो आधुनिकता से भी पूरित है।"[10] निष्कर्ष रूप में, "'मैला आँचल' ... की आत्मा 'गोदान' की तरह क्लासिक न होकर रोमांटिक है, व्यापक और ऐतिहासिक न होकर स्थानिक और विशिष्ट है, संयत और उदात्त न होकर स्वप्निल और भावुक है। यदि 'गोदान' भारतीय किसान के कष्ट और संघर्ष की गाथा गाने वाला महाकाव्य है तो 'मैला आँचल' ग्रामवासिनी भारतमाता के कंठ से प्रवाहित होने वाला मार्मिक लोकगीत है।"[11]

'परती : परिकथा' (1957) अप्रतिम शब्दशिल्पी फणीश्वरनाथ 'रेणु' का दूसरा बृहत्काय उपन्यास है, जिसमें लोक–जीवन के विस्तृत फलक पर दो पीढ़ियों के संघर्ष और विकास की रोचक कथा वर्णित है। कोसी के अंचल में फैली हुई हज़ारों बीघा परती ज़मीन किस प्रकार नवीन सरकारी योजनाओं के फलस्वरूप नया जीवन प्राप्त करती है, रूपांतर की प्रक्रिया में उस धरती के आस–पास का स्थिर जीवन किस प्रकार अचानक विक्षुब्ध और चंचल हो उठता है, सदियों से जमे हुए वहाँ के जीवन की परतें किस प्रकार टूटने लगती हैं और नवीन और पुरातन, परिवर्तन और यथामत्ता, प्रगति और परंपरा के बीच किस प्रकार भयंकर खींचतान, टकराहट और संघर्ष आरंभ हो जाता है, इसका अत्यंत विषद चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। यह मूलतः कोसी की बाढ़ में ऊसर हुई धरती को परिश्रमपूर्वक हरा–भरा करने की संघर्षभरी कहानी है। इसका कथा–केंद्र पूर्णिया ज़िले का परानपुर गाँव है और कथा–काल है 1952–55। भू–स्वामी से भू–सेवक बना गाँव का भूतपूर्व ज़मींदार जित्तन गाँव के चतुर्मुखी सुधार, नवनिर्माण और आधुनिकीकरण की भावना को समर्पित होकर गाँव के देवी–देवताओं और मिथ्या अंधविश्वासों से लड़ता हुआ अंत में लाखों एकड़ बंध्या भूमि को उपजाऊ बनाने में सफल हो जाता है। इस परती भूमि में उन्नत तथा विकसित वैज्ञानिक कृषि की अनंत संभावनाएँ छिपी पड़ी हैं। उपन्यास में ज़मींदारी–उन्मूलन, भूमि–पुनर्वितरण, ग्राम–सुधार, कोसी–योजना, कृषि–क्रांति, सांस्कृतिक आयोजन, आर्थिक विकास–कार्यक्रम–जैसे नवनिर्माणकारी स्वरों से युक्त आंदोलनों का बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ है। 'रेणु' के प्रवक्ता और कथानायक के रूप में जित्तन के माध्यम से समस्त पूर्णिया अंचल, विशेषतः परानपुर गाँव, मूर्तिमान और मुखरित हो उठा है। जित्तन परिवर्तन और विकास का प्रतीक है। गाँव की

प्रतिक्रियावादी शक्तियों से लड़कर भी वह टूटता नहीं है और निरंतर गाँव के सांस्कृतिक उत्थान में जुटा रहता है। "समूचा उपन्यास पढ़ जाने के बाद लगता है, जैसे हम किसी गाँव का अद्‌भुत विचित्र 'कार्निवल' देख आए हैं। अनेकानेक रंगों, गंधों, सुरों की हहराती धारा हमारे बीच बहकर आगे बढ़ गई है, अनेक व्यक्तियों की असंगतियों, सुख–दुःख, हास–विलास से हमने अपने को संपृक्त किया है; किंतु ये चेहरे, रंग और सुर अपने में महत्त्वपूर्ण नहीं है महत्त्वपूर्ण है इस 'कार्निवल' की गतिमयता, अविरल प्रवाह की कलकल, हवा में उड़ते रंगों की आभा, एक मायावी लय, जो समस्त व्यक्तियों और घटनाओं के बीच गुज़रती हुई हमारे मस्तिष्क और हृदय को आलोड़ित कर देती है।"[12] 'परती : परिकथा' का "बिखराव 'रेणु' के कथा–शिल्प का एक विशिष्ट प्रयोग है, जिसे उन्होंने ग्राम्य जीवन के वैविध्यपूर्ण सर्वांगीण और परिवर्तनशील मानवीय संबंधों को अभिव्यक्त करने के लिए अपनाया है यही कारण है कि उपन्यास का हर पात्र, चाहे थोड़े समय के लिए ही हमारे सम्मुख आए, हमारे मानस–पटल पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ जाता है। ... परानुपर की धरती के इतिहास से उनके जीवन का वैशम्य, सुख–दुःख और संवेदनाएँ अंतरंग रूप से जुड़ी दिखाई देती हैं।"[13] दूसरी ओर, डॉ॰ परमानंद श्रीवास्तव के मतानुसार "'परती : परिकथा' का बिखराव कथा–शिल्प का नहीं, जीवन–वस्तु का बिखराव है। अनुभव–बिंबों का, परानपुर की विशेषताओं और दुर्बलताओं का, मनुष्य के राग–विराग, सुख–दुःख का यह अबाध विस्तार आपाततः किसी सतर्क अंतर्योजना का विषय नहीं जान पड़ता। इस असतर्क विस्तार में यदि चरित्र पहचाने जा रहे हैं और प्रतीकों या सामूहिक अभिप्रायों का निजत्व नष्ट नहीं हुआ है तो इसलिए कि इनके स्रष्टा की पहचान इनसे संवेदना के स्तर पर अभिन्न हो उठी है।"[14] डॉ॰ मक्खनलाल शर्मा ने सही लिखा है कि "भारतीय ग्राम–संस्कृति को रूपायित करने का जो महत् उद्देश्य इस उपन्यास के समक्ष रहा है, उसके लिए लोक–जीवन की जिस गहरी अनुभूति तथा सौहार्दमयी आस्था की अपेक्षा थी, वह इस उपन्यासकार में यदि नहीं होती तो यह उपन्यास कभी भी इतना सशक्त, प्राणवान् तथा जीवंत नहीं बन सकता था।"[15] परानपुर के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन की विशेषताओं और विसंगतियों का जैसा ठोस, संश्लिष्ट और बहुरंगी चित्रण इस उपन्यास में मिलता है, वह अद्वितीय है। बाहर की परती के ही अनुरूप ग्राम–मन की भीतरी कड़ी परती को तोड़ना भी इस कथाकृति का लक्ष्य है। यदि मन की भूमि परती पड़ जाए तो समूची औद्योगिक समृद्धि निरर्थक हो जाती है। 'परती : परिकथा' अनुर्वरा भूमि को हरा–भरा बनाने की कथा के साथ मन की बंजरता से उबरने, उसे तोड़ने और पुनः उर्वर बनाने की भी कथा है प्रतीकार्थ में कहें तो राजनीतिक मुक्ति के बाद मानव–मन को मुक्त करने की कथा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. फणीश्वरनाथ. (1954). 'रेणु' : 'मैला आँचल' (प्रथम संस्करण की भूमिका). राजकमल प्रकाशनः नई दिल्ली. पृष्ठ **5.**
2. सिंह, विजेन्द्रनारायण. (1966). 'आलोचना'. अप्रैल. पृष्ठ **193–194.**
3. गुलाटी, डॉ० यश. प्रतिनिधि हिंदी उपन्यास (भाग–1). उपरिवत् (संदर्भ–2). पृष्ठ **230.**
4. मिश्र, डॉ० रामदरश. (1982). हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा. राजकमल प्रकाशनः नई दिल्ली. पृष्ठ **232.**
5. जैन, नेमिचंद्र. (1989). धूरे साक्षात्कार. वाणी प्रकाशनः नई दिल्ली. पृष्ठ **34–36.**
6. सिंहल, डॉ॰ शशिभूषण. (1979). हिंदी उपन्यास : बदलते संदर्भ. पृष्ठ **65.** प्रवीण प्रकाशनः नई दिल्ली।

7. तिवारी, डॉ॰ नित्यानंद. (1987). हिंदी उपन्यास : 1950 के बाद (संपा॰ डॉ॰ निर्मला जैन, डॉ॰ नित्यानंद तिवारी), नेशनल पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली. पृष्ठ **22–23.**
8. गुलाटी, डॉ॰ यश. प्रतिनिधि हिंदी उपन्यास (भाग–1). उपरिवत् (संदर्भ–2). पृष्ठ **224.**
9. जैन, नेमिचंद्र. अधूरे साक्षात्कार. उपरिवत् (संदर्भ–7). पृष्ठ **42.**
10. वार्ष्णेयॉ, लक्ष्मीसागर. (1989). हिंदी उपन्यास : उपलब्धियाँ. राधाकृष्ण प्रकाशनः नई दिल्ली. पृष्ठ 61–62.
11. वर्मा, प्रमोद. (1978). रोमान की वापसी. रचना प्रकाशनः इलाहाबाद. पृष्ठ **116.**
12. वर्मा, निर्मल. (1965). विवेक के रंग (संपा॰ देवीशंकर अवस्थी). भारतीय ज्ञानपीठः वाराणसी. पृष्ठ **262.**
13. उपरिवत्. पृष्ठ **268.**
14. श्रीवास्तव, डॉ॰ परमानंद. (1976). उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा. नेशनल पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली. पृष्ठ **64.**
15. शर्मा, डॉ॰ मक्खनलाल. (1974). हिंदी उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा. प्रभात प्रकाशनः दिल्ली. पृष्ठ **399.**